सरोजा

बनाम

चिन्नुसेमी(मृतक) जरिये विधिक प्रतिनिधि व अन्य

24 अगस्त 2007

तरूण चटर्जी और पी.के.बालासुब्रमण्यम, जे.जे.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

धारा. 11- प्रांगन्याय-संपत्ति विवाद-प्रत्यर्थी संख्या 3 ने अपने पति 'के' के विरूद्व स्वामित्व की घोषणा के लिए मुकदमा दायर किया- 'के' की ओर से कोई उपस्थित नहीं आया-मुकदमा लंबित रहते हुए 'के' ने अपीलार्थी को संपत्ति बेची-अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दायर मुकदमें में खुद को शामिल नहीं किया-इसके बजाए उसी संपत्ति के संबंध में स्वाम्त्वि की घोषणा के लिये प्रत्यर्थी संख्या 3 के विरूद्व मुकदमा दायर किया। पूर्व मुकदमें में पारित एकतरफा डिक्री के आधार पर, अपीलार्थी द्वारा दायर बाद के मुकदमें को रेस ज्यूडिकेटा के सिद्वान्त के आधार पर निस्तारित किया गया। 'के' ने एक पक्षीय डिक्री को अपास्त कराने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की फलतः उक्त एक पक्षीय डिक्री ने अंतिमता प्राप्त की-प्रभाव-निर्धारित किया ''पूर्व के वाद में एक पक्षीय डिक्री के पारित हो जाने

से प्रांगन्याय के सिद्वान्त के आधार पर अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत पश्चातवर्ती वाद धारा 11 सिविल प्रक्रिया संहिता की सभी छः शर्तों की संतुष्टि होने से पोषणीय नहीं रहने से खारिज किया गया।

वर्ष 1989 में प्रतिवादी संख्या 3 ने अपने पति, 'के' के विरूद्व एक संपत्ति के संबंध में स्वामित्व की घोषणा के लिए मुकदमा दायर किया, जिसमें वर्ष 1985 में किए गए मौखिक विभाजन के संदर्भ में स्वामित्व का दावा किया गया था। 'के' की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ, हालांकि उस पर नोटिस की तामिल हुई थी जबकि मुकदमा अभी भी लंबित था। 'के' ने वर्ष 1990 में संपत्ति को अपीलार्थी को बेच दिया। अपीलार्थी ने 'के' के विरूद्व प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दायर मुकदमें में खुद को शामिल करने के लिये कोई कदम नहीं उठाया। इसके बजाय, वर्ष 1990 में ही अपीलार्थी ने पूर्ण स्वामित्व और कब्जे का दावा करने वाली उसी संपत्ति के संबंध में स्वामित्व की घोषणा के लिये प्रतिवादी संख्या 3 के विरूद्व एक मुकदमा दायर किया। वर्ष 1992 में, पूर्व वाद को अपीलार्थी द्वारा दायर बाद के वाद के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में एक तरफा आदेश किया गया था। 'के' ने एक तरफा आदेश को अपास्त करने के लिये कोई कदम नहीं उठाया। पूर्व मुकदमें में पारित एक तरफा डिक्री ने अंतिमता प्राप्त की। वर्ष 1993 में अपीलार्थी द्वारा दायर किए गए बाद के

मुकदमें पर भी फैसला सुनाया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 3 ने बाद के मुकदमें में डिक्री के खिलाफ अपील दायर की जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई थी। उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के फैसले की पुष्टि करते हुए कहा कि पूर्व मुकदमें में प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में पारित एक तरफा डिक्री अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत पश्चात्वर्ती वाद पर प्रांगन्याय के सिद्धान्त पर सही है। फलतः अपील प्रस्तुत हुई हैं।

इसलिए वर्तमान अपील याचिका खारिज करते हुए कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया-

1. धारा 11 सिविल प्रक्रिया संहिता में रेस ज्यूडिकेटा के सामान्य सिद्धांतों को शामिल किया गया है। धारा 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत प्रावधानों को ध्यान से पढ़ने के बाद यह स्पष्ट है कि प्रांगन्याय का गठन करने के लिये निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए-

1-वाद दो होने चाहिए जिसमें से एक पूर्ववर्ती वाद और दूसरा पश्चात्वर्ती वाद,

2-जिस न्यायालय ने पूर्ववर्ती वाद का निर्णय किया है वह पश्चात्वर्ती वाद को भी सुनने में सक्षम होना चाहिए,

3-दोनों ही वादों में विवाद् का बिन्दु प्रत्यक्षतः और सारतः वस्तुतः या रचनात्मक रूप से एक सा ही होना चाहिए,

4-पश्चात्वर्ती वाद में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद की वही विषयवस्तु होनी चाहिए जो पूर्ववर्ती वाद में न्यायालय द्वारा सुनी गई और निर्धारित की गई,

5-दावे के पक्षकार अथवा वे पक्षकार जिनके अधीन या उनमें से कोई दोनों दावों में पक्षकार समान होने चाहिए,

6-दोनों दावों में पक्षकारों ने एक ही स्वत्व के तहत दावा दायर किया होना चाहिए

2.1 पूर्व मुकदमें में पारित एक तरफा डिक्री प्रांगन्याय के रूप में काम करेगी। पूर्व के वाद में एक पक्षीय डिक्री के पारित हो जाने से अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत पश्चातवर्ती वाद धारा 11 सिविल प्रक्रिया संहिता की सभी छः शर्तों की सम्पूर्ण संतुष्टि होती है।

2.2 जहां तक शर्त संख्या 1, 2 व 3 का प्रश्न है। इनके सन्दर्भ में कोई भी विवाद् नहीं उठाया जा सकता और ना ही उठाया गया, अतः हस्तगत प्रकरण में यह सभी शर्तें पूर्णतः संतुष्ठ हुई हैं।

2.3. शर्त संख्या 4 के सन्दर्भ में प्रत्यर्थी संख्या 3 के पति 'के' के विरूद्व तामिल किया गया सम्मन विधिवत रूप से सही स्वीकार्य था और तामिल

के बावजूद 'के' ने उसके विरूद्व प्रस्तुत वाद में पैरवी किया जाना और स्वयं उपस्थित होना भी सही नहीं समझा। जब एक बार 'के' के विरूद्व सुनवाई करके एक पक्षीय डिक्री पारित कर दी गई तब इसे अंतिम विनिश्चय के रूप में माना जाना चाहिए। यह सुनिश्चित रूप से प्रतिपादित सिद्धान्त है कि पारित एक पक्षीय डिक्री भी उस व्यक्ति के विरूद्व उतनी ही प्रभावकारी बाध्यकारी होगी जितनी की यदि वह व्यक्ति उपस्थित होता तो उसे सुनकर पारित की जाती। साथ ही साम्य के रूप में यह भी सुनिश्चित प्रतिपादित सिद्धान्त है कि एक पक्षीय डिक्री को चुनौती देने वाला पक्षकार यदि न्यायालय को यह संतुष्ठ कर देता है कि वह एक पक्षीय डिक्री कपट के द्वारा प्राप्त की गई थी तो उसी प्रकार उस डिक्री को व्यवहृत किया जायेगा। ऐसी स्थिति होने के कारण शर्त संख्या 4 पूर्णतः संतुष्टकारी थी अतः तद्नुसार यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि प्रांगन्याय का सिद्धान्त लागू नहीं होगा। स्वीकृततः अपीलार्थी ने अपने वाद में 'के' के विरूद्व या अन्य प्रत्यर्थीयों के विरूद्व धोखाधड़ी या मिलीभगत का कोई भी मामला नहीं उठाया था। जब पश्चात्वर्ती वाद संस्थित किया गया था तब उस समय पूर्ववर्ती वाद में एक पक्षीय डिक्री पारित नहीं की गई थी और यह भी स्वीकृत तथ्य है कि इसे पश्चात्वर्ती वाद के लंबित रहने के दौरान ही पारित किया गया था। यद्यपि अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला था कि वह धोखाधड़ी या मिलीभगत का मामला प्रस्तुत करके एवं धोखाधड़ी के आधार पर एक पक्षीय डिक्री को चुनौती

देते हुए पश्चात्वर्ती वाद के मुकदमें में वाद का संशोधन दायर करने के लिये स्वतंत्र था। हालांकि एक पक्षीय डिक्री इस अवधि के दौरान ही पारित की गई थी। हालांकि यह उसके द्वारा नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप क्योंकि अपीलार्थी ऐसा कोई भी प्रकरण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर सका था जिसमें उक्त महिला के द्वारा की गई खरीदी को कपट या मिलीभगत द्वारा किया गया जैसा कि उपरोक्त रूप से इंगित किया गया है। यहां तक कि एक पक्षीय डिक्री में भी इस आधार पर चुनौती नहीं दी गई कि 'के' और प्रत्यर्थी संख्या 3 ने पारस्परिक रूप से ऐसा कोई मिलीभगत की है, पूर्ववर्ती वाद के लंबित रहने के दौरान 'के' ने वह संपत्ति बेच दी अतः अब न्यायालय के समक्ष यह निर्धारित करने के लिये खुला मंच नहीं था कि ऐसी परिस्थिति में एक पक्षीय डिक्री के विरूद्व प्रांगन्याय प्रभावकारी नहीं होगा क्योंकि 'के' और अपीलार्थी के मध्य कोई कपटपूर्ण अंतरण नहीं किया गया था।

2.4 अपीलार्थी 'के' से जिसके विरूद्व पूर्ववर्ती वाद में एक पक्षीय डिक्री पारित की गई थी, से उसके द्वारा अर्जित स्वत्व के आधार पर मुकदमा चला रही थी। यद्यपि अपीलार्थी पूर्ववर्ती वाद में पक्षकार नहीं था तो भी 'के' के माध्यम से पश्चात्वर्ती वाद उसके द्वारा दायर किया गया। प्रांगन्याय के तर्क को बनाए रखने के लिए यह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है कि दोनों वाद में पक्षकार समान हो। यह आवश्यक है कि मुदद्ा उन्हीं

पक्षों के बीच या उन पक्षों के मध्य होना चाहिए जिनके तहत वे या उनमें से कोई भी दावा करते हों। इसलिए शर्त संख्या 5 भी सम्पूर्ण संतुष्ठ होती है।

2.5 शर्त संख्या 6 भी पूरी तरह से संतुष्ठ होती है।

अरूक्कानी अम्मल बनाम गुरूस्वामी द लॉ वीकली वेल्यूम-100(1987) 707, ब्रह्मानंद राय बनाम डी समेकन निदेशक, गाजीपुर, आकाशवाणी (1987) वोल्यूम-100 अनुमोदित और ए. एस. मणि (मृतक) एल.आर. तिरूनावुक्कारासु व अन्य बनाम मेसर्स उडुपी हरि निवास का प्रतिनिधित्व पार्टनर्स व अन्य (1996)1 मद्रास लॉ जनरल 171 (अंतर किया गया) व ईश्वरदास बनाम मध्य प्रदेश राज्य व अन्य ए.आई.आर. (1979)एस.सी. 551 एवं अन्नामुथु थेवर(मृतक)जरयि विधिक प्रतिनिधि बनाम अलगाम्मल व अन्य जे.टी. (2005)6 एस.सी. 333 पर भरोसा किया।

सिविल अपीलय न्याय निर्णय :2007 की सिविल अपील संख्या 3907।

1994 की दूसरी अपील संख्या 840 में मद्रास उच्च न्यायालय के अंतिम निर्णय और आदेश से

अपीलार्थी के लिए आर.नेदुमारन और के.एस.महादेवन

उत्तरदाताओं के लिये वी.प्रभाकर, वी सुब्रमणयम और रेवती राघवन।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था-

तरूण चटर्जी, जे.

1. अनुमति दी गई।

2. यह अपील अपीलार्थी द्वारा 1994 की द्वितिय अपील संख्या 840 में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय और डिक्री के विरूद्व विशेष अनुमति प्राप्त करके प्रस्तुत की गई है, जिसमें उच्च न्यायालय ने पहले अपीलीय न्यायालय के निर्णय की पुष्टि करते हुऐ द्वितीय अपील को खारिज कर दिया था जिसमें अपीलार्थी के मुकदमें को आदेश देने वाले निचले न्यायालय के फैसले और डिक्री को अपास्त कर दिया।

3. इस अपील में जिस मुख्य प्रश्न पर निर्णय लेने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने एक तरफा डिक्री को उचित ठहराया था जो कि सरोजा और उसके नाबालिग बच्चों सुगंथमणि और रमेश(सरोजा इस अपील में प्रत्यर्थी संख्या 3 होने के नाते) के पक्ष में पारित किया गया था, जो उत्तरदाताओं के विरूद्व अपीलार्थी के कहने पर पश्चातवर्ती रूप से दायर किए गए वाद में प्रांगन्याय के रूप में कार्य करेगा और जिसमें से वर्तमान अपील उदभूद हुई है।

4. वर्तमान मामले के तथ्यों से व्यवहार करने और गुणावगुण पर विचार करने से पहले जैसा कि उपरोक्त विवेचन में प्रश्न उठाया गया है हमे सर्वप्रथम सिविल प्रक्रिया संहिता के धारा 11 में वर्णित प्रांगन्याय के सिद्धान्त को देख लेना चाहिए जो कि निम्न प्रकार उद्दत-

पूर्व न्याय-कोई भी न्यायालय किसी ऐसे वाद या विवाद्यक का विचारण नहीं करेगा जिसमें प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य-विषय उसी हक के अधीन मुकदमा करने वाले उन्हीं पक्षकारों के बीच के, या ऐसे पक्षकारों के बीच के, जिनसे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं, किसी पूर्ववर्ती वाद में भी ऐसे न्यायालय में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य रहा है, जो ऐसे पश्चात्वर्ती वाद का या उस वाद का, जिसमें ऐसा विवाद बाद में उठाया गया है, विचारण करने के लिए सक्षम था और ऐसे न्यायालय द्वारा सुना जा चुका है और अंतिम रूप से विनिश्चित किया जा चुका है।

हमने दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में वर्णित प्रावधानों का सावधानीपूर्वक अवलोकन कर लिया है। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में वर्णित प्रावधानों के ध्यानपूर्वक अध्ययन के पश्चात् प्रांगन्याय के सिद्धान्तों को विनिर्मित करने वाली वर्णित शर्तें निम्न प्रकार हैं-

1-वाद दो होने चाहिए जिसमें से एक पूर्ववर्ती वाद और दूसरा पश्चात्वर्ती वाद,

2-जिस न्यायालय ने पूर्ववर्ती वाद का निर्णय किया है वह पश्चात्वर्ती वाद को भी सुनने में सक्षम होना चाहिए,

3-दोनों ही वादों में विवाद् का बिन्दु प्रत्यक्षतः और सारतः वस्तुतः या रचनात्मक रूप से एक सा ही होना चाहिए,

4-पश्चात्वर्ती वाद में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद की वही विषयवस्तु होनी चाहिए जो पूर्ववर्ती वाद में न्यायालय द्वारा सुनी गई और निर्धारित की गई,

5-दावे के पक्षकार अथवा वे पक्षकार जिनके अधीन या उनमें से कोई दोनों दावों में पक्षकार समान होने चाहिए,

6-दोनों दावों में पक्षकारों ने एक ही स्वत्व के तहत दावा दायर किया होना चाहिए।

हम इन शर्तों पर बाद में पुनः विचार करेंगे।

5. जिन तथ्यों के आधार पर यह अपील प्रस्तुत की गई है उन तथ्यों को वर्णित करते हैं तो वाद संख्या 233/1989(जिसे बाद में पूर्ववर्ती वाद कहा जायेगा) 19 अप्रेल, 1989 को सरोजा प्रत्यर्थी संख्या 3 और उसके अवयस्क बच्चों नामतः सुगंथमणि और रमेश द्वारा उसके पति कुप्पुसामी

और उसके किरायेदार के विरूद्व जिला मुंसिफ न्यायालय मेटूर में स्वत्व की घोषणा एवं स्थाई निषेद्याज्ञा के लिये उस संपत्ति पर प्रस्तुत किया गया था जिसकी नाप 0.78 हेक्टेयर जो 56/5ए मराकोटटई करावल्ली गांव, जिला सलेम, तमिलनाडु राज्य में स्थित(जिसे बाद में वाद संपत्ति कहा जायेगा) है। प्रत्यर्थी संख्या 3 और उसके अवयस्क बच्चों के द्वारा उपरोक्त वर्णित वाद में जिस वाद सपंत्ति का विवेचन किया गया है, वह एक 5 अश्वशक्ति की मोटर पम्प सेट और एक घर जिसका नंबर 3/95 है जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 3 का अंश भी होता है और उसके अवयस्क पुत्र जिनके मध्य मौखिक बंटवारा 1985 में हुआ था, के स्वत्व के बारे में किया गया है जबकि पूर्ववर्ती वाद लंबित था तब वाद में प्रतिवादी कुप्पुसामी और प्रत्यर्थी संख्या 3 के पति द्वारा उक्त वादग्रस्त संपत्ति को सरोजा को बेच दिया जो बेचान अपीलार्थी द्वारा विक्रय पत्र 13 जून 1990 को 1,00,000 रूपये के प्रतिफल के बदले में बेचान कर पंजीबद्व कराया था। 9 जुलाई 1990 को अपीलार्थी ने एक वाद ओ.एस.नंबर 493/1990(जिसे बाद में संक्षेप में ''पश्चात्वर्ती वाद'' कहा जायेगा) के रूप में जिला मुंसिफ न्यायालय मेटूर में स्वामित्व की घोषणा और स्थाई निषेद्याज्ञा के लिये यह आरोप लगाते हुए प्रस्तुत किया कि वह वाद की संपत्ति की निरपेक्ष पूर्ण मालिक थी और वाद संपत्ति पर कब्जेधारी थी जिसे उसने 13 जून 1990 को बिक्री के एक पंजीकृत विलेख द्वारा कुपुसामी से खरीदा था और वह अपनी क्रय की तारीख से वाद संपत्ति पर

निरन्तर कब्जे में थी और पटट्ा चिटट्ा और अडंगल भी उसके नाम पर थे। प्रत्यर्थी संख्या 3 ने अपने लिखित कथन(जवाब) में वाद के महत्वपूर्ण तथ्यों से इंकार किया और अपने मौखिक कथनों में यह कथन किया कि मौखिक विभाजन द्वारा उक्त वादग्रस्त संपत्ति उसके नाबालिग बेटे के साथ उसके हिस्से में आ गई थी जिसे अपीलार्थी ने अस्वीकार किया था। 24 फरवरी 1992 को प्रत्यर्थी संख्या 3 और उसके नाबालिग बच्चों के पक्ष में पूर्व के मुकदमें में एक पक्षीय डिक्री पारित की गई थी। दिनांक 10 नवम्बर 1993 को अपीलार्थी द्वारा पश्चातवर्ती रूप से दायर किये गये बाद के मुकदमें पर भी निर्णय सुनाया गया। प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय में एक अपील प्रस्तुत की गई जिसे स्वीकार करते हुए प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थी के वाद को खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय ने द्वितिय अपील में प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की और इस तरह द्वितिय अपील को खारिज कर दिया। हस्तगत अपील उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्व विशेष अनुमति प्राप्त करके प्रस्तुत की गई है।

6. यद्यपि कुप्पुसामी पर विधिवत रूप से प्रभावी तामिल हो चुकी थी तो भी प्रत्यर्थी संख्या 3 व अन्य उसकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। जब प्रत्यर्थी संख्या 3 के द्वारा दायर वाद लंबित था तब अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत वाद भी जिला मुंसिफ मेटूर न्यायालय के समक्ष लंबित रहते

हुए दोनों मुकदमों को साथ साथ समरूप सुनवाई कर निस्तारण के लिये प्रत्यर्थी संख्या 3 के कहने पर एक आवेदन प्रस्तुत किया था जिसका अपीलार्थी द्वारा विरोध किया गया था। न्यायालय ने समरूप साथ साथ सुनवाई के अनुरोध को खारिज कर दिया था। तब दोनों मुकदमें अलग अलग चल रहे थे, जैसा कि उपरोक्त वर्णित उल्लेख किया गया है कि 24 फरवरी 1992 को कुप्पुसामी के विरूद्व दायर पूर्व मुकदमें में एक पक्षीय डिक्री पारित की गई थी जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 3 और उसके नाबालिग बच्चों के हित में वाद सपंत्ति के संबंध में अधिकार, और स्वामित्व घोषित किए गए थे। यहां यह अंकित किया जाना समिचिन है कि अपीलार्थी के द्वारा, प्रत्यर्थी संख्या 3 के द्वारा दायर किए गए वाद में उसके स्वयं और उसके नाबालिग बच्चों द्वारा कुप्पुसामी के विरूद्व दायर मुकदमें में खुद को सम्मिलित करने के लिये कोई कदम नहीं उठाया गया था। हालांकि अपीलार्थी ने कुप्पुसामी से वादग्रस्त संपत्ति को खरीद लिया था। यहां यह भी अंकित किया जाता है कि अपीलार्थी के विक्रेता कुप्पुसामी या अपीलार्थी द्वारा पूर्व में एक पक्षीय डिक्री को अपास्त कराने के लिये कोई कदम नहीं उठाया था। फलतः अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पूर्ववर्ती वाद में पारित एक पक्षीय डिक्री ने अंतिमता प्राप्त कर ली थी।

7. उपरोक्त समस्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अब हम अपील में प्रांगन्याय के प्रश्न पर विचार करते हैं। हमारे दृष्टि में अपीलार्थी के

पश्चात्वर्ती वाद के लंबित रहने के दौरान पूर्ववर्ती वाद में पारित एक पक्षीय डिक्री पश्चात्वर्ती वाद के लिए प्रांगन्याय के आदेश के रूप में कार्य करती है। यहा यह पुर्नावृत रूप से यह अंकित किया जाता है कि अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि उसने कुप्पुसामी से खरीदकर वादग्रस्त संपत्ति का मालिकाना स्वत्व हासिल कर लिया था जिसने भले ही पूर्व मुकदमें में पारित एक पक्षीय डिक्री द्वारा अपना मालिकाना हक खो दिया था।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि पूर्ववर्ती वाद में पारित एक पक्षीय डिक्री दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में वर्णित प्रांगन्याय के सिद्धान्त के अर्थों में जैसा कि पूर्व में वर्णित किया गया है, उसे गठित करने के लिए उन शर्तों को पूरा करना होगा जो इस मामले में स्वीकृत तथ्यों पर पश्चात्वर्ती वाद के लिए पूर्ण रूप से संतुष्ठ नहीं करते थे। इस कारण प्रांगन्याय का सिद्धान्त लागू नहीं होता। हालांकि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि स्वीकृत तथ्यों पर जैसा कि पूर्वोक्त रूप से उल्लेखित है न्यूनतम शर्त संख्या 4, 5 व 6 उद्दत की गई है, की संतुष्टी नहीं हुई हैं। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का पुरजोर रूप से विरोध किया और उन्होंने तर्क दिया कि प्रांगन्याय का गठन करने के लिए पूर्वोक्त रूप से उद्दत सभी शर्तें पूरी हो गई हैं, फलतः पूर्ववर्ती वाद में पारित एक पक्षीय डिक्री अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत वाद में

प्रांगन्याय के रूप में काम करेगी। दोनों पक्षों की ओर से रखे गए समस्त तर्कों पर विचार करते हुए तथा हस्तगत प्रकरण में स्वीकृत तथ्यों को ध्यान में रखते हुए तथा अभिलेख पर उपलब्ध अन्य सामग्री के आधार पर हम अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा रखे गए तर्कों से सहमत नहीं हैं। हमारी दृष्टि में वाद संख्या 233/1989 में पारित एक पक्षीय डिक्री अपीलार्थी द्वारा पश्चातवर्ती रूप से प्रस्तुत किए गए वाद में प्रांगन्याय के रूप में प्रवृत होगी क्योंकि वर्तमान हस्तगत वाद में पूर्वोक्त रूप से वर्णित सभी शर्तें विधिवत संतुष्ठ होती हैं। जहां तक शर्त संख्या 1, 2 और 3 के संदर्भ में हमारे समक्ष किसी भी पक्षकार द्वारा कोई भी विवाद् नहीं उठाया गया है क्योंकि वाद में ये शर्तें पूर्ण रूप से संतुष्ठ हो चुकी थीं।

9. सर्वप्रथम हम शर्त संख्या 4 पर विचार करें जिसके अनुसार बाद के वाद में प्रत्यक्ष रूप से और सारतः पर्याप्त रूप से जारी मामले की सुनवाई की गई होगी और अंत में न्यायालय द्वारा पूर्व वाद में निर्णय लिया गया होगा। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देना चाहा कि चूंकि पूर्व वाद का एक तरफा निर्णय किया गया था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि इसे अंतिमतः अदालत द्वारा सुना और तय किया गया था और इसलिए, शर्त संख्या 4 संतुष्ठ नहीं थी और अपीलार्थी के लिए प्रांगन्याय के सिद्धान्त को लागू नहीं किया जा सकता था। हम अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा रखे गये तर्क से असहमत हैं। हस्तगत

प्रकरण में यह स्वीकार्य तथ्य है कि कुप्पुसामी पर सम्मन की तामील विधिवत रूप से की जा चुकी थी और सम्मन की तामील के बावजूद कुप्पुसामी ने उसके विरूद्व दायर किए गए मुकदमें में उपस्थित होकर प्रकरण का प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा। हमारे विचार में सुनवाई के बाद एक बार कुप्पुसामी के विरूद्ध एक पक्षीय डिक्री पारित हो जाने के बाद इसे अंतिम निर्णय के रूप में लिया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित रूप से प्रतिपादित सिद्धान्त है कि पारित एक पक्षीय डिक्री भी उस व्यक्ति के विरूद्व उतनी ही प्रभावकारी बाध्यकारी होगी जितनी की यदि वह व्यक्ति उपस्थित होता तो उसे सुनकर पारित की जाती। साथ ही साम्य के रूप में यह भी सुनिश्चित प्रतिपादित सिद्धान्त है कि एक पक्षीय डिक्री को चुनौती देने वाला पक्षकार यदि न्यायालय को यह संतुष्ठ कर देता है कि वह एक पक्षीय डिक्री कपट के द्वारा प्राप्त की गई थी तो उसी प्रकार उस डिक्री को व्यवहृत किया जायेगा। ऐसी स्थिति होने के कारण शर्त संख्या 4 पूर्णतः संतुष्टकारी थी अतः तद्नुसार यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि प्रांगन्याय का सिद्धान्त लागू नहीं होगा। स्वीकृततः अपीलार्थी ने अपने वाद में 'के' के विरूद्व या अन्य प्रत्यर्थीयों के विरूद्व धोखाधड़ी या मिलीभगत का कोई भी मामला नहीं उठाया था। जब पश्चात्वर्ती वाद संस्थित किया गया था तब उस समय पूर्ववर्ती वाद में एक पक्षीय डिक्री पारित नहीं की गई थी और यह भी स्वीकृत तथ्य है कि इसे पश्चात्वर्ती वाद के लंबित रहने के दौरान ही पारित किया गया था। यद्यपि अपीलार्थी

के लिए यह विकल्प खुला था कि वह धोखाधड़ी या मिलीभगत का मामला प्रस्तुत करके एवं धोखाधड़ी के आधार पर एक पक्षीय डिक्री को चुनौती देते हुए पश्चात्वर्ती वाद के मुकदमें में वाद का संशोधन दायर करने के लिये स्वतंत्र था। हालांकि एक पक्षीय डिक्री इस अवधि के दौरान ही पारित की गई थी। हालांकि यह उसके द्वारा नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप क्योंकि अपीलार्थी ऐसा कोई भी प्रकरण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर सका था जिसमें उक्त महिला के द्वारा की गई खरीदी को कपट या मिलीभगत द्वारा किया गया जैसा कि उपरोक्त रूप से इंगित किया गया है। यहां तक कि एक पक्षीय डिक्री में भी इस आधार पर चुनौती नहीं दी गई कि 'के' और प्रत्यर्थी संख्या 3 ने पारस्परिक रूप से ऐसा कोई मिलीभगत की है, पूर्ववर्ती वाद के लंबित रहने के दौरान 'के' ने वह संपत्ति बेच दी अतः अब न्यायालय के समक्ष यह निर्धारित करने के लिये खुला मंच नहीं था कि ऐसी परिस्थिति में एक पक्षीय डिक्री के विरूद्व प्रांगन्याय प्रभावकारी नहीं होगा क्योंकि 'के' और अपीलार्थी के मध्य कोई कपटपूर्ण अंतरण नहीं किया गया था। इस सन्दर्भ में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा अरूक्कानी अम्मल बनाम गुरूस्वामी द लॉ वीकली वेल्यूम-100(1987) 707 में निम्न न्यायिक दृष्टान्त का सन्दर्भ दिया है-

"जिला मुंसिफ द्वारा लिए गए इस दृष्टिकोण की सराहना करना भी मुश्किल है कि एक पक्षीय डिक्री को गुण-

दोष पर पूर्ण डिक्री नहीं माना जा सकता है। एक आदेश जो एक पक्षीय पारित किया जाता है वह उतना ही अच्छा और प्रभावी माना जायेगा जितना कि गुणावगुण पर सुनवाई के बाद पारित किया गया आदेश। एक पक्षीय डिक्री पारित होने से पहले, अदालत को यह निर्धारित करना होगा कि वाद में किए गए अभिवचन और अनुरोध साबित हो चुके हैं। प्रधान जिला मुंसिफ द्वारा दिए गए इस अवलोकन का समर्थन/अभिस्वीकृति किया जाना मुश्किल है कि ऐसी डिक्री को गुणावगुण पर पारित डिक्री के रूप में विचारित नहीं की जा सकती। निःसंदेह जो डिक्री बिना द्विपक्षीय सुनवाई के पारित की गई है परन्तु एक पक्षीय डिक्री पारित करने के अवसर आने पर जब वह वादी के द्वारा उठाये गए अनुयोज्य अनुरोध पर गुणावगुण पर सुनकर पारित की गई है तो वह विधिवत डिक्री है"(जोर दिया गया)

हम मद्रास उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण से पूर्णतः समहत हैं कि एक पक्षीय रूप से पारित डिक्री उतनी ही अच्छी और प्रभावकारी डिक्री होती है जो द्विपक्षीय रूप से प्रतिद्वन्दी को सुनकर पारित की गई डिक्री। ब्रह्मनंद राय बनाम डी. समेकन निदेशक, गाजीपुर ए.आई.आर. 1987 इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 100 के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा

इसी तरह का विचार व्यक्त किया गया है। हालांकि अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायिक निर्णय ए.एस.मणि(मृतक)एल.आर. तिरूनावुक्कारासु व अन्य बनाम मेसर्स उडुपी हरि निवास का प्रतिनिधित्व पार्टनर्स व अन्य (1996)1 मद्रास लॉ जनरल 171 ने हमें यह मानने के लिए आमंत्रित किया कि प्रांगन्याय का सिद्धान्त लागू नहीं होगा क्योंकि पूर्ववर्ती वाद एक पक्षीय रूप से निर्णित किया गया था। हमारे विचार में यह न्यायिक दृष्टान्त वाला निर्णय हस्तगत प्रकरण के तथ्यों से भिन्न मामला है। उस न्यायिक निर्णय में यह अवलोकन कि एक पक्षीय डिक्री प्रांगन्याय के रूप में कार्य नहीं करेगी इस आधार पर किया था कि पूर्ववर्ती याचिका किरायेदारों के विरूद्व बेदखली के लिए दायर की गई थी और पिछली याचिका केवल तकनीकी आधार पर खारिज कर दी गई थी एवं मात्र इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मद्रास उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी एक पक्षीय डिक्री प्रांगन्याय के रूप में काम नहीं करेगी क्योंकि याचिका पर सुनवाई ही नहीं की गई थी और अंततः दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में वर्णित प्रावधानों के अनुसार निर्णय किया गया। इसलिए हमारे विचार में चूंकि शर्त संख्या 4, जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, संतुष्ठ थी, इसलिए हमारा मानना है कि न्यायिक निर्णय के सिद्धान्त वर्तमान मामले में लागू होंगे जैसा कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा भी पुष्टि की गई थी।

10. अब हम शर्त संख्या 5 के सन्दर्भ में विचार करते हैं जो यह कहती है कि "दावे के पक्षकार अथवा वे पक्षकार जिनके अधीन या उनमें से कोई दोनों दावों में पक्षकार समान होने चाहिए"। यह सही है कि अपीलार्थी, प्रतिवादी संख्या 3 और अन्य लोगों द्वारा कुप्पुसामी के विरूद्व दायर मुकदमें में पक्षकार नहीं था जिनसे अपीलार्थी ने बिक्री के पंजीकृत विलेख द्वारा संपत्ति खरीदी थी। वर्तमान हस्तगत प्रकरण में अपीलार्थी उसके द्वारा अर्जित स्वत्वाधिकार के आधार पर प्रकरण चला रही थी जिसके विरूद्व पूर्व मुकदमें में एक पक्षीय डिक्री पारित की गई थी। इसलिए हमारे लिए यह मानना मुश्किल नहीं होगा कि अपीलार्थी जो हालांकि पूर्व मुकदमें में पक्षकार नहीं थी, ने बाद में उसके द्वारा दायर मुकदमें में कुप्पुसामी के माध्यम से दावा किया। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक दृष्टान्त ईश्वरदास बनाम मध्य प्रदेश राज्य व अन्य ए.आई.आर. (1979)एस.सी. 551 के मामले में यह निर्धारित किया था कि प्रांगन्याय के आदेश को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दोनों मामलों में सभी पक्षकार समान हो। यह आवश्यक है कि मुद्दा उन्हीं पक्षों के बीच या उन पक्षों के बीच होना चाहिए जिनके तहत वे या उनमें से कोई भी दावा करता है। (जोर दिया गया) इसलिए शर्त संख्या 5 भी संतुष्ठ होती है।

11. अंत में हम शर्त संख्या 6 के बारे में विचार करते है जो यह कहती है कि "दोनों दावों में पक्षकारों ने एक ही स्वत्व के तहत दावा दायर किया

होना चाहिए"। अब हमें यह जांच करनी है कि क्या पश्चात्वर्ती वाद के पक्षकार समान स्वत्व के निर्धारित करने के उदेश्य से मुकदमा कर रहे थे तो क्या अपीलार्थी के द्वारा दायर किये गये पश्चातवर्ती वाद के लिए, पूर्ववर्ती वाद में पारित की गई एक पक्षीय डिक्री प्रांगन्याय के रूप में प्रवृत्त होगी। हमारे विचार में यह शर्त भी पूरी तरह से संतुष्ठ है। इस संबंध में हम उच्चतम न्यायालय के न्यायिक दृष्टान्त अन्नामुथु थेवर(मृतक) जरिये विधिक प्रतिनिधि बनाम अलगाम्मल व अन्य जे.टी. (2005)6 एस.सी. 333 में प्रतिपादित सिद्धान्त से सहमत है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पूर्ववर्ती मुकदमा संयुक्त रूप से मुथुस्वामी द्वारा मालिक और गिरवी रखने वाले के रूप में वादग्रस्त संपत्ति का मुकदमा दायर किया था। पश्चात्वर्ती मुकदमा अपील में जो अपीलार्थी है, के द्वारा, जिसने मुथुस्वामी से मुकदमें की संपत्ति खरीदी थी, के द्वारा दायर किया गया था। न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया था कि उस अपील में अपीलार्थी उसी स्वत्व के तहत मुकदमा चला रहा था जो मुथुस्वामी के स्वत्व की थी। इस प्रकार इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि वादग्रस्त संपत्ति के स्वामित्व का मुद्दा प्रत्यक्षतः और सारतः पूर्ववर्ती मुकदमें में शामिल था इसलिए उस अपील में अपीलार्थी द्वारा दायर किया गया वाद प्रांगन्याय के रूप में कार्य करेगा या कम से कम प्रकरण रचनात्मक प्रांगन्याय के सिद्धान्त से प्रभावित था। यह स्थिति होने के कारण और यहां हमारे द्वारा की गई विवेचना को ध्यान में रखते

हुए हम यह निर्धारित करते हैं कि पूर्ववर्ती वाद में पारित एक पक्षीय डिक्री के आधार पर, अपीलार्थी द्वारा दायर पश्चात्वर्ती वाद के द्वारा प्रभावित होता है।

12. इसके अतिरिक्त अधिवक्ता पक्षकारान की ओर से अन्य कोई मुद्दा नहीं उठाया गया। उच्च न्यायालय के समक्ष भी अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा लंबित वाद के सिद्धान्त की प्रयोज्यता का बिन्दु नहीं उठाया गया था। फलतः हमें वर्तमान हस्तगत प्रकरण में वाद लम्बन के सिद्धान्त की प्रयोज्यता के बारे में प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

13. उपरोक्त कारणों से हम इस अपील में गुणावगुण पर कोई आधार नहीं पाते हैं। फलतः यह अपील खारिज की जाती है। खर्चों के बारे में किसी प्रकार का कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।

बी.बी.बी.

याचिका खारिज की गई

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी गोपाल बिजौरीवाल (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।